21

कौन भाषा, कौन बोली

यह लेख सामान्य तौर पर भाषा और बोली के बीच माने गए अन्तर की पड़ताल करता है। यह दिखाता है कि माने गए अन्तर वास्तव में उचित नहीं हैं। लेख इन भाषाओं के बारे में मान्यताओं और इन मान्यताओं के आधारों की जाँच करता है। यह दिखाता है कि ऐसी कुछ मान्यताएँ बनाने से पहले हमें उस बारे में दिए गए तर्कों को ठीक से परख लेना चाहिए। सभी भाषाएँ कुछ नियमों पर आधारित हैं और इन सभी में असंख्य वाक्य व सभी तरह के विचार व्यक्त करने व साहित्य रचने की सम्भावना है। भाषाओं के विकास व उनके प्रभाव में अन्तर उनके साथ जुड़ी सत्ता व ताकत पर निर्भर है न कि उनके अन्दर छुपी सम्भावनाओं के कारण। लेख यह भी कहता है कि बिना सोचे-समझे इस तरह की मान्यताओं पर विश्वास करने से ना केवल बच्चों को नुकसान होता है बल्कि समाज को भी इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है।

हर सामान्य व्यक्ति अपनी भाषा खूब अच्छी तरह से बोलता व समझता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति यह समझे कि वह भाषा के बारे में काफी कुछ जानता है। असल में सच तो यही है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा के बारे में बहुत कुछ जानता है। लेकिन इस भाषागत ज्ञान के बारे में आम आदमी अक्सर सचेत नहीं होता। वास्तव में उस ज्ञान के बारे में उसके लिए कुछ भी विशेष कहना सम्भव नहीं हो पाता। अगर यह कहा जाए कि आपकी अपनी भाषा का पूर्ण व्याकरण आपके पास है - आपके दिमाग में - तो शायद कुछ अटपटा-सा लगे। लेकिन यह बिलकुल सच है। दूसरी तरफ भाषा के बारे में जो कई बातें लोग अक्सर कहते हैं वे एकदम निराधार अवधारणाओं से जुड़ी रहती हैं। इन निराधार अवधारणाओं के कारण काफी सामाजिक, मानसिक व शैक्षिक नुकसान होता है। यदि हम सब भाषा की प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करें तो शायद इस नुकसान से बचने का कोई रास्ता निकले।

व्याकरण की समझ कितनी?

अपनी भाषा के बारे में आपका ज्ञान पूर्ण एवं त्रुटि रहित है। अपनी भाषा बोलने व समझने में आप कभी गलती नहीं करते। यदि करें तो तुरन्त उसमें सुधार कर लेते हैं। इस तरह यदि कोई दूसरा आपकी भाषा बोलने में गलती करता है तो आप उसे तुरन्त पकड़ लेते हैं।

आप नित नए-नए वाक्य बोल व समझ सकते हैं। यही नहीं आपको यह भी मालूम है कि किस सामाजिक सन्दर्भ में कैसी भाषा उचित रहेगी। लेकिन इस ज्ञान के बारे में मुक्त रूप से चर्चा करना केवल भाषाविदों तक ही सीमित रह गया। और भाषाविद् जिस भाषा में बात करते हैं वह आम आदमी की समझ में नहीं आती।

उदाहरण के लिए, यह तो हर हिन्दीभाषी जानता है कि 'गीता खाना खाता है' सही वाक्य नहीं है। कुछ सोचकर शायद वह यह भी बता दे कि 'गीता' स्त्रीलिंग है इसलिए क्रिया पुल्लिंग नहीं हो सकती। (गो कि भारत में ही ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिनमें कर्ता के पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होने से क्रिया पर कोई असर नहीं पड़ता। अँग्रेज़ी भी ऐसी ही भाषा है)। लेकिन निम्न दो वाक्यों में यह नियम लागू नहीं होता -

मोहन ने खाना खाया।

गीता ने खाना खाया

'मोहन' पुल्लिंग है व 'गीता' स्त्रीलिंग, फिर भी दोनों ने 'खाया'। यह कहना कि-

गीता ने खाना खाई।

गलत है। इसी तरह यदि आप दुविधा में पड़े हिन्दीभाषी का ध्यान निम्न दो वाक्यों-

मोहन ने रोटी खाई।

गीता ने रोटी खाई।

की ओर ले जाएँ, तो शायद कुछ कठिनाई से वह यह बता पाए कि यदि कर्ता के सामने 'ने' आ जाए तो क्रिया कर्म से मेल खाती है। सो कर्ता कोई भी हो - पुल्लिंग या स्त्रीलिंग - पर 'ने' आने पर

... खाना खाया (खाना पुल्लिंग है)

... रोटी खाई (रोटी स्त्रीलिंग है आदि)

लेकिन निम्न दो वाक्यों के बारे में हिन्दीभाषी क्या कहेगा!

मोहन ने गीता को मारा।

गीता ने मोहन को मारा।

ऐसी ही समस्याओं को लेकर भाषावैज्ञानिक भाषा से जूझते रहते हैं। अब देखिए ना -

गीता मोहन को मारती है।

तो सही है लेकिन

गीता ने मोहन को मारी।

सही नहीं है।

वास्तव में जैसे ही एक हिन्दीभाषी ऐसा कोई वाक्य सुनता है उसे मालूम होता है कि कोई अहिन्दीभाषी हिन्दी बोलने का प्रयास कर रहा है। साफ है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा का व्याकरण पूरी तरह से जानता है। लेकिन उस व्याकरण का अध्ययन करना व उसके बारे में बातचीत कर सकना बिलकुल अलग बात है और शायद कठिन भी।

खैर, हमें तो उस ज्ञान के बारे में बातचीत करनी थी जिसका आधार अवैज्ञानिक व बेबुनियाद अवधारणाएँ हैं। हर सामान्य व्यक्ति इस तरह के ज्ञान पर आधारित अनेक विश्वास या मान्यताएँ पाल लेता है, निर्णय ले लेता है, लोगों को अलग श्रेणियों में बाँट लेता है और कुछ से घृणा व कुछ से प्यार करने लगता है।

इन निराधार मान्यताओं को समझना आवश्यक है। बिना समझे इनसे छुटकारा पाना सम्भव नहीं।

कौन भाषा, कौन बोली

एक मुख्य मसला है भाषा व बोली का। किसी भी सामान्य व्यक्ति से पूछकर देखिए, वह अत्यधिक विश्वास से आपको भाषा व बोली में अन्तर बताने लगेगा। कहेगा, "भाषा का व्याकरण होता है, बोली का नहीं। भाषा की लिपि होती है, बोली की नहीं। भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है जबकि बोली का स्थानीय। भाषा मानकीकृत व परिमार्जित होती है, बोली नहीं। जिसका प्रयोग साहित्य, पत्राचार, दफ्तरों, अदालतों आदि में हो वह भाषा और जो बोलचाल के लिए इस्तेमाल हो वह बोली। भाषा में शुद्ध-अशुद्ध का प्रश्न उठता है, बोली में सब चलता है आदि, आदि।"

वास्तव में इस तरह के सभी तर्क गलत हैं और समाज के लिए अत्यधिक हानिकारक भी। भाषाई दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अन्तर नहीं। दोनों का व्याकरण होता है। दोनों नियमबद्ध हैं। किसको भाषा कहा जाएगा और किसको बोली यह एक सामाजिक व राजनैतिक प्रश्न है। सत्ताधारी व पैसेवाले लोग अक्सर जो बोली बोलते हैं, वह भाषा कहलाने लगती है। उसी के व्याकरण व शब्दकोश लिखे जाते हैं। उसी में साहित्य लिखा जाता है। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनकर वही बोली मानकीकृत भाषा बन बैठती है। उसी से मिलते-जुलते, बातचीत करने के अन्य तरीके उस 'भाषा की बोलियाँ' कहलाने लगते हैं। भाषा व समाज के इस रिश्ते को समझना आवश्यक है।

शायद यह ठीक ही कहा गया है कि भाषा केवल एक सशस्त्र बोली है। मुख्य प्रश्न वास्तव में दृष्टिकोण का है। एक गरीब बच्चे की भाषा को एक मानकीकृत भाषा के मापदण्ड से निरन्तर नापना कहाँ तक जायज़ है?

एक ही मापदण्ड क्यों

व्याकरण के प्रश्न को लीजिए। हिन्दी का अपना व्याकरण है। लेकिन ब्रज, अवधी व मैथिली का भी अपना व्याकरण है, जो हिन्दी से कदाचित् अलग है। हिन्दी व्याकरण को मापदण्ड मानकर ब्रज के व्याकरण को क्यों देखा जाए? सदियों से लोग संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि को आधार मानकर संसार की सभी भाषाओं में शब्दों के आठ कारकगत रूप तलाश करते रहे हैं। हिन्दी के हर व्याकरण में आपको संस्कृत की ही तरह आठ कारक रूप दिखाने का प्रयत्न रहेगा। लेकिन वास्तव में हिन्दी में तीन ही कारकों के अनुसार शब्द परिवर्तन होता है, यथाः

'लड़का' आदि

	एकवचन	**बहुवचन**
कर्ता	लड़का	लड़के
कर्म/अन्य	लड़के	लड़कों
संबोधन	हे लड़के!	हे लड़को

'किताब' आदि

कर्ता	किताब	किताबें
कर्म/अन्य	किताब	किताबों
सम्बोधन	हे किताब!	हे किताबो !

हिन्दी की कारक व वचन संरचना समझने के लिए इससे अधिक की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार, हिन्दी व्याकरण से अन्य भाषाओं को नापना उचित नहीं है। हिन्दी का 'नन्द का नन्दन कदम्ब के पेड़ के नीचे धीरे-धीरे मुरली बजाता है' ब्रज भाषा में 'नन्द को नन्दन कदम के तरु तर धीरे-धीरे मुरली बजावै' हो जाएगा।

जबकि मैथिल-कोकिल विद्यापति ने इसे यूँ कहा:

नन्दक नन्दन कदमक तरुतर धीरे-धीरे मुरली बजाव।

मैथिली का नियम है कि 'नन्द' व 'नन्दन' में जो सम्बन्ध है वह 'क' के प्रयोग से दिखाया जाएगा; ब्रज में वही 'को' के व हिन्दी में वह 'का' के प्रयोग से। तोः

हिन्दी: नन्द का नन्दन

ब्रज: नन्द को नन्दन

मैथिली: नन्दक नन्दन

यह कहना कि ब्रज या मैथिली भाषा को सदैव 'नन्द का नन्दन' ही कहना चाहिए उचित नहीं होगा। ऊपर के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि कब हिन्दी-ब्रज-मैथिली एक-दूसरे से घुलमिल जाएँगी और कब अपना-अपना स्वतंत्र रूप दिखाएँगी, यह कहना भी कोई आसान काम नहीं।

आप मैथिली, सिन्धी, कोंकणी, नेपाली या मणिपुरी को कब 'भाषा' का दर्जा देना चाहते हैं, यह एक राजनैतिक प्रश्न है, भाषाई नहीं।

सत्ता से जुड़े सवाल

व्याकरण को लेकर शुद्ध-अशुद्ध का प्रश्न भी बार-बार सामने आता है। विशेषकर अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। मैंने पहले भी कहा कि प्रश्न समझ व दृष्टिकोण का है। पहली बात - बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण-युक्त है। दूसरी बात - उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है। तीसरी बात - मानकीकृत भाषा के सीखने के प्रयास में जो अशुद्धियाँ बच्चा करता है वे निराधार या बेतरतीब नहीं होतीं, उनकी अपनी संरचना होती है। चौथी बात - किसी अध्यापक के शुद्ध करने से बच्चे अपनी गलती एकदम सुधार नहीं लेते। गलतियाँ समय आने पर ही सुधरती हैं। पाँचवीं बात - कोई भी बच्चा, कोई भी भाषा (पहली, दूसरी या दसवीं) बिना 'गलतियाँ करे' नहीं सीखता।

साहित्य के प्रश्न को ही लीजिए। अक्सर कहा जाता है कि जिसमें शिष्ट साहित्य लिखा जाए वह भाषा, शेष उस भाषा की बोलियाँ। आम आदमी आज यही समझता है कि खड़ी बोली हिन्दी की मानकीकृत भाषा है, साहित्य उसी में लिखा जाता है; अखबारों, दफ्तरों आदि में यही प्रयोग होती है। ब्रज, अवधी, मैथिली आदि हिन्दी की बोलियाँ हैं।

कैसी विडम्बना है - अवधी, जिसमें तुलसी का *रामचरितमानस* लिखा गया; ब्रज, जिसमें सूरदास ही नहीं अपितु अनेक हिन्दू व मुसलमान लेखकों ने महान साहित्य की रचना की व मैथिली, जिसमें विद्यापति ने लिखा - सब आज हिन्दी की माताएँ न होकर उसकी बोलियाँ हो गईं। जब राजनीति व सत्ता का केन्द्र कन्नौज था, तो साहित्य की शिष्ट भाषा थी 'अपभ्रंश'। खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि का जो भी रूप रहा हो, उसकी बोलियाँ कहलाईं। इसी तरह जब राजनैतिक केन्द्र ब्रज-क्षेत्र बना तो शिष्ट साहित्य की भाषा 'ब्रज' हो गई और दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली उसकी बोली कहलाई। शासन व सत्ता का केन्द्र दिल्ली-मेरठ हुआ तो ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियाँ कहलाने लगीं। वही बात कि सवाल दरअसल भाषा व राजनीति के सम्बन्ध को समझने का है। उसको समझकर एक ऐसा सजग दृष्टिकोण बनाने का है जो वैज्ञानिक व संरचनात्मक हो। इसलिए साहित्य के आधार पर भाषा व बोली में अन्तर सम्भव नहीं।

कोई भी लिपि, कोई भी भाषा

लिपि के प्रश्न को लीजिए। अक्सर लोग ऐसे बात करते हैं जैसे भाषा व लिपि का कोई जन्मजात सम्बन्ध हो। वास्तव में संसार की सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जा सकती हैं। और एक ही भाषा को लिखने के लिए आप संसार की सभी लिपियों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी व अँग्रेज़ी भाषा और देवनागरी व रोमन लिपि को लीजिएः

हिन्दी (देवनागरी): मोहन खेल रहा है।

हिन्दी (रोमन): Mohan khel rahaa hai.

अँग्रेज़ी (रोमन): Mohan is playing.

अँग्रेज़ी (देवनागरी): मोहन इज़ प्लेइंग।

भारत की अनेक भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं व एक संस्कृत को लिखने के लिए भारत में ही अनेक लिपियों का प्रयोग होता है। ऐसा भी नहीं है कि लिपि होने से ही किसी भाषा में साहित्य की सम्भावना होती है। ऋग्वेद जैसे साहित्य के लिए सदियों से किसी लिपि की आवश्यकता नहीं पड़ी। सारे भारत में फिर भी ऋग्वेद का वाचन एक ही तरह से होता है। गाँव-गाँव में रामचरितमानस नित गाया, सुना जाता है - लिपि की कोई आवश्यकता नहीं। भाषा प्राचीन है; लिपि अभी कल का आविष्कार। लिपि होने न होने से भाषा-बोली में अन्तर करना सम्भव नहीं। आप कुछ दोस्त मिलकर अपनी भाषा के लिए बड़ी आसानी से अपनी एक अलग लिपि बना सकते हैं। उसे कितना राजनैतिक समर्थन मिलेगा वह एक अलग बात है। सन्थाली आज कई लिपियों में लिखी जाती है - देवनागरी, रोमन, बांग्ला, उड़िया व ओलचिकी। इनमें से कौन-सी लिपि मानकीकृत हो जाएगी यह एक राजनैतिक प्रश्न है। अभी द्वन्द्व जारी है।

विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग की खूब ठहरी। बार-बार कहो कि हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है, प्रयोग व्यापक। जगह-जगह पोस्टर लगाओ। अखबारों में नित इश्तहार दो, रेडियो व टीवी पर प्रयोग करो और न जाने क्या-क्या। बातों-बातों में हिन्दी को 'संवैधानिक राजभाषा' से 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दे दो। शिक्षा का माध्यम हिन्दी कर दो। और फिर कहो - लो भाई हिन्दी हुई भाषा व ब्रज, अवधी, मैथिली, बुन्देली, भोजपुरी आदि उसकी बोलियाँ। इन 'बोलियों' को बोलनेवालों की अपार संख्या को हिन्दी में जमा कर दो और फिर कहो कि देखो, करोड़ों लोग हिन्दी बोलते हैं, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक। थोड़ा धीरज रखकर ध्यान से सोचिए - हिन्दी आखिर कहाँ बोली जाती है? मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग कहाँ-कहाँ होता है?

क्या आप या आपके दोस्त घर पर या आपस में हिन्दी बोलते हैं या आप भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मगही, बुन्देली, ब्रज आदि-आदि बोलते हैं। मानकीकृत हिन्दी शायद मेरठ, इलाहाबाद व बनारस के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। क्या चम्बा व हमीरपुर (हिमाचल), रोहतक व भिवानी (हरियाणा), जैसलमेर व सवाई माधोपुर (राजस्थान), छपरा (बिहार) व बलिया (उत्तर प्रदेश), छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश) व रायपुर (छत्तीसगढ़) में मानकीकृत हिन्दी बोली जाती है?

मेरी हिन्दी में निम्न प्रयोग देखकर मेरे कुछ साथी अक्सर हँसते हैं, लेकिन जब उनके अपने बच्चे वही प्रयोग करते हैं तो लाचार हो जाते हैं:

मैने बाज़ार जाना है।

मेरे को काम है।

मुझे एक कौली दे दो।

ज़रा सब्ज़ी को छेड़ा दे देना।

जो पंजाबी कहकर मेरा मज़ाक उड़ाते हैं वे यह भूल जाते हैं कि राजनीति व सत्ता का केन्द्र अब दिल्ली है। हिन्दी भी यहीं की चलेगी। या फिर लाखों पंजाबी जो अपनी मातृभाषा हिन्दी बताते हैं या लाखों ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी गिन ली जाती है - हिन्दी बोलनेवालों की संख्या में से कम कर देने चाहिए।

साफ है कि लिपि, व्याकरण, साहित्य, विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा व बोली में अन्तर करना सम्भव नहीं। फिर भी यह अन्तर क्यों किया जाता है? और इतनी गहराई से किया जाता है कि हम 'हिन्दी' को भाषा व 'ब्रज' या 'बुन्देली' को बोली कहने में कुछ भी झिझक महसूस नहीं करते। हिन्दी को एक मानकीकृत भाषा का दर्जा देने के लिए व ब्रज, अवधी आदि को उसकी बोलियाँ बनाने के लिए आपके चारों ओर निरन्तर प्रयास हो रहे हैं; उन्हें ज़रा गौर से समझने का प्रयास करें।

स्रोत

- रमाकान्त अग्निहोत्री, शैक्षिक संदर्भ, सितम्बर-अक्टूबर 1996, पृ 37-43, भोपाल: एकलव्य।